श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

भीष्म स्तुति

निज मति से अति रति कृष्ण स्तुति
सुंदर गति पाकर, भीष्म इति

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम् ।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्॥

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्॥

श्री गणेशाय नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

प्रथमः स्कन्धः

अथ नवमोऽध्याय :

सूत उवाच

इति भीतः(फ्) प्रजाद्रोहात्- सर्वधर्मविवित्सया।
ततो विनशनं(म्) प्रागाद्, यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥ 1॥

सर्व+ धर्म+ विवित्सया , देव + व्रतोऽ + पतत्

सूतजी कहते हैं- इस प्रकार राजा युधिष्ठिर प्रजाद्रोह से भयभीत हो गये। फिर सब धर्मों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से उन्होंने कुरुक्षेत्र की यात्रा की, जहाँ भीष्मपितामह शरशय्या पर पड़े हुए थे।

तदा ते भ्रातरः(स्) सर्वे, सदश्वैः(स्) स्वर्णभूषितैः।

अन्वगच्छन् रथैर्विप्रा, व्यासधौम्यादयस्तथा ॥ 2॥

व्यास+ धौम्या+ दयस्तथा

शौनकादि ऋषियो ! उस समय उन सब भाइयों ने स्वर्णजटित रथों पर,जिनमें अच्छे-अच्छे घोड़े जुते हुए थे,सवार होकर अपने भाई युधिष्ठिर का अनुगमन किया। उनके साथ व्यास,धौम्य आदि ब्राह्मण भी थे।

भगवानपि विप्रर्षे, रथेन सधनञ्जयः।

स तैर्व्यरोचत नृपः(ख्), कुबेर इव गुह्यकैः ॥3॥

तैर् + व्यरोचत

शौनकजी ! अर्जुन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी रथ पर चढक़र चले। उन सब भाइयों के साथ महाराज युधिष्ठिर की ऐसी शोभा हुई, मानो यक्षों से घिरे हुए स्वयं कुबेर ही जा रहे हों।

दृष्ट्वा निपतितं(म्) भूमौ, दिवश्च्युतमिवामरम्।

प्रणेमुः(फ्) पाण्डवा भीष्मं(म्), सानुगाः(स्) सह चक्रिणा ॥4॥

दिवश् + च्युत+ मिवामरम्

अपने अनुचरों और भगवान् श्रीकृष्ण के साथ वहाँ जाकर पाण्डवों ने देखा कि भीष्मपितामह स्वर्ग से गिरे हुए देवता के समान पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। उन लोगों ने उन्हें प्रणाम किया।

तत्र ब्रह्मर्षयः(स्) सर्वे, देवर्षयश्च सत्तम।

राजर्षयश्च तत्रासन्, द्रष्टुं(म्) भरतपुङ्गवम् ॥5॥

भर + तपुङ्गवम्

शौनकजी ! उसी समय भरतवंशियों के गौरव रूप भीष्मपितामह को देखने के लिये सभी ब्रहमर्षि, देवर्षि और राजर्षि वहाँ आये।

पर्वतो नारदो धौम्यो, भगवान् बादरायणः।

बृहदश्वो भरद्वाजः(स्), सशिष्यो रेणुकासुतः ॥6॥

बृह+ दश्वो

वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्- त्रितो गृत्समदोऽसितः।

कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च, कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥7॥

गृत् + समदोऽ+ सितः

अन्ये च मुनयो ब्रह्मन्, ब्रह्मरातादयोऽमलाः।

शिष्यैरुपेता आजग्मुः(ख्), कश्यपाङ्गिरसादयः ॥8॥

ब्रह्म+ राता+ दयोऽ+ मलाः , कश्य+ पाङ्गि+ रसादयः

पर्वत, नारद, धौम्य, भगवान् व्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्यों के साथ परशुराम जी, वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन तथा और भी शुकदेव आदि शुद्ध हृदय महात्मागण एवं शिष्यों के सहित कश्यप, अङ्गिरा-पुत्र बृहस्पति आदि मुनिगण भी वहाँ पधारे।

तान् समेतान् महाभागा- नुपलभ्य वसूत्तमः।

पूजयामास धर्मज्ञो, देशकालविभागवित् ॥9॥

देश+ काल+ विभाग+वित्

भीष्मपितामह धर्म को और देश-काल के विभाग को—कहाँ किस समय क्या करना चाहिये, इस बात को जानते थे। उन्होंने उन बड़भागी ऋषियों को सम्मिलित हुआ देखकर उनका यथायोग्य सत्कार किया।

कृष्णं(ञ्) च तत्प्रभावज्ञ, आसीनं(ञ्) जगदीश्वरम्।

हृदिस्थं(म्) पूजयामास, माययोपात्तविग्रहम् ॥10॥

माययो+ पात् + तविग्रहम्

वे भगवान् श्रीकृष्ण का प्रभाव भी जानते थे। अतः उन्होंने अपनी लीला से मनुष्य का वेष धारण करके वहाँ बैठे हुए तथा जगदीश्वर के रूप में हृदय में विराजमान भगवान् श्रीकृष्ण की बाहर तथा भीतर दोनों जगह पूजा की।

पाण्डुपुत्रानुपासीनान्, प्रश्रयप्रेमसङ्गतान्।

अभ्याचष्टानुरागास्रै- रन्धीभूतेन चक्षुषा ॥11॥

पाण्डु+ पुत्रा+ नुपा+ सीनान्, प्रश्रय+ प्रेम+ सङ्गतान्, अभ्या+ चष्टा+ नुरागा+ स्रै

पाण्डव बड़े विनय और प्रेम के साथ भीष्मपितामह के पास बैठ गये। उन्हें देख कर भीष्म-पितामह की आँखें प्रेम के आँसुओं से भर गयीं। उन्होंने उन से कहा।

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं(यँ), यद्यूयं(न्) धर्मनन्दनाः।

जीवितुं(न्) नार्हथ क्लिष्टं(वँ), विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥12॥

विप्रधर्मा+ च्युता+ श्रयाः

धर्मपुत्रो ! हाय ! हाय ! यह बड़े कष्ट और अन्याय की बात है कि तुम लोगों को ब्राह्मण, धर्म और भगवान् के आश्रित रहने पर भी इतने कष्ट के साथ जीना पड़ा, जिस के तुम कदापि योग्य नहीं थे।

सं(म्)स्थितेऽतिरथे पाण्डौ, पृथा बालप्रजा वधूः।

युष्मत्कृते बहून् क्लेशान्, प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥13॥

सं(म्)स्थितेऽ + तिरथे , युष्मत् + कृते

अतिरथी पाण्डु की मृत्यु के समय तुम्हारी अवस्था बहुत छोटी थी। उन दिनों तुम लोगों के लिये कुन्ती रानी को और साथ-साथ तुम्हें भी बार-बार बहुत-से कष्ट झेलने पड़े।

सर्वं(ङ्) कालकृतं(म्) मन्ये, भवतां(ञ्) च यदप्रियम्।

सपालो यद्वशे लोको, वायोरिव घनावलिः ॥14॥

जिस प्रकार बादल वायु के वश में रहते हैं, वैसे ही लोकपालों के सहित सारा संसार काल भगवान् के अधीन है। मैं समझता हूँ कि तुम लोगों के जीवन में ये जो अप्रिय घटनाएँ घटित हुई हैं, वे सब उन्हीं की लीला हैं।

यत्र धर्मसुतो राजा, गदापाणिर्वृकोदरः।

कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं(ञ्) चापं(म्), सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥15॥

गदा+ पाणिर् + वृकोदरः , सुहृत्+ कृष्णस् + ततो

नहीं तो जहाँ साक्षात् धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर हों, गदाधारी भीमसेन और धनुर्धारी अर्जुन रक्षा का काम कर रहे हों, गाण्डीव धनुष हो और स्वयं श्रीकृष्ण सुहृद् हों—भला, वहाँ भी विपत्ति की सम्भावना है?

न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्, पुमान् वेद विधित्सितम्।

यद्विजिज्ञासया युक्ता, मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ॥16॥

यद्+ विजिज्ञासया

ये काल रूप श्रीकृष्ण कब क्या करना चाहते हैं, इस बात को कभी कोई नहीं जानता। बड़े-बड़े ज्ञानी भी इसे जानने की इच्छा करके मोहित हो जाते हैं।

तस्मादिदं(न्) दैवतन्त्रं(वँ), व्यवस्य भरतर्षभ।

तस्यानुविहितोऽनाथा, नाथ पाहि प्रजाः(फ्) प्रभो ॥17॥

तस्या + नुविहितोऽ + नाथा

युधिष्ठिर ! संसार की ये सब घटनाएँ ईश्वरेच्छा के अधीन हैं। उसी का अनुसरण करके तुम इस अनाथ प्रजा का पालन करो; क्योंकि अब तुम्हीं इसके स्वामी और इसे पालन करने में समर्थ हो।

एष वै भगवान् साक्षा- दाद्यो नारायण:(फ्) पुमान्।

मोहयन्मायया लोकं(ङ्), गूढश्चरति वृष्णिषु ॥18॥

मोहयन् + मायया , गूढश् + चरति

ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। ये सबके आदि कारण और परम पुरुष नारायण हैं। अपनी माया से लोगों को मोहित करते हुए ये यदुवंशियों में छिपकर लीला कर रहे हैं।

अस्यानुभावं(म्) भगवान्, वेद गुह्यतमं(म्) शिव:।

देवर्षिर्नारद:(स्) साक्षाद्- भगवान् कपिलो नृप ॥19॥

अस्या+ नुभावं(म्) , देवर्षिर् + नारद: (स्)

इनका प्रभाव अत्यन्त गूढ़ एवं रहस्यमय है। युधिष्ठिर ! उसे भगवान् शङ्कर, देवर्षि नारद और स्वयं भगवान् कपिल ही जानते हैं।

यं(म्) मन्यसे मातुलेयं(म्), प्रियं(म्) मित्रं(म्) सुहृत्तमम्।

अकरो:(स्) सचिवं(न्) दूतं(म्), सौहृदादथ सारथिम् ॥20॥

सुहृत् + तमम् , सौहृदा+ दथ

जिन्हें तुम अपना ममेरा भाई, प्रिय मित्र और सबसे बड़ा हितू मानते हो तथा जिन्हें तुमने प्रेमवश अपना मन्त्री, दूत और सारथितक बनाने में संकोच नहीं किया है, वे स्वयं परमात्मा हैं।

सर्वात्मन:(स्) समदृशो, ह्यद्वयस्यानहङ्कृते:।

तत्कृतं(म्) मतिवैषम्यं(न्), निरवद्यस्य न क्वचित् ॥21॥

ह्यद् + वयस्या + नहङ्कृते:

इन सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वितीय, अहंकार रहित और निष्पाप परमात्मा में उन ऊँचे-नीचे कार्यों के कारण कभी किसी प्रकार की विषमता नहीं होती।

तथाप्येकान्तभक्तेषु, पश्य भूपानुकम्पितम्।

यन्मेऽसूं(म्)स्त्यजत:(स्) साक्षात्, कृष्णो दर्शनमागत: ॥22॥

तथाप्ये+ कान्त+ भक्तेषु, भूपा+नुकम्पितम्, यन्मेऽ+ सूं(म्)स् + त्यजत:(स्)

युधिष्ठिर ! इस प्रकार सर्वत्र सम होने पर भी, देखो तो सही, वे अपने अनन्य प्रेमी भक्तों पर कितनी कृपा करते हैं। यही कारण है कि ऐसे समय में जबकि मैं अपने प्राणों का त्याग करने जा रहा हूँ, इन भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे साक्षात् दर्शन दिया है।

भक्त्याऽऽवेश्य मनो यस्मिन्, वाचा यन्नाम कीर्तयन्।

त्यजन् कलेवरं(यँ) योगी, मुच्यते कामकर्मभिः ॥23॥

भक्त्या+ वेश्य

भगवत्परायण योगी पुरुष भक्ति भाव से इनमें अपना मन लगाकर और वाणी से इनके नाम का कीर्तन करते हुए शरीर का त्याग करते हैं और कामनाओं से तथा कर्म के बन्धन से छूट जाते हैं।

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां(ङ्),

कलेवरं(यँ) यावदिदं(म्) हिनोम्यहम्।

प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्-

मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥24॥

प्रसन्न + हासा+ रुण+ लोचनोल्लसन् , ध्यान+ पथश् + चतुर्भुजः

वे ही देवदेव भगवान् अपने प्रसन्न हास्य और रक्त कमल के समान अरुण नेत्रों से उल्लसित मुख वाले चतुर्भुजरूप से, जिसका और लोगों को केवल ध्यान में दर्शन होता है, तब तक यहीं स्थित रहकर प्रतीक्षा करें, जब तक मैं इस शरीर का त्याग न कर दूँ'।

सूत उवाच

युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य, शयानं(म्) शरपञ्जरे।

अपृच्छद्विविधान्धर्मा- नृषीणां(ञ्) चानुशृण्वताम् ॥25॥

युधिष्ठिरस् + तदा+ कर्ण्य , अपृच्छद् + विविधान् + धर्मा, चानु+ शृण्वताम्

सूतजी कहते हैं—युधिष्ठिर ने उनकी यह बात सुनकर शर-शय्या पर सोये हुए भीष्मपितामह से बहुत-से ऋषियों के सामने ही नाना प्रकार के धर्मों के सम्बन्ध में अनेकों रहस्य पूछे।

पुरुषस्वभावविहितान्, यथावर्णं(यँ) यथाश्रमम्।

वैराग्यरागोपाधिभ्या- माम्नातोभयलक्षणान् ॥26॥

पुरुष+ स्वभाव+ विहितान्, वैराग्य+ रागो+ पाधिभ्या , माम्नातो+ भय+ लक्षणान्

दानधर्मान् राजधर्मान्, मोक्षधर्मान् विभागशः।

स्त्रीधर्मान् भगवद्धर्मान्, समासव्यासयोगतः ॥27॥

भगवद् + धर्मान्, समा + सव्यास+ योगतः

धर्मार्थकाममोक्षां(म्)श्च, सहोपायान् यथा मुने।

नानाख्यानेतिहासेषु, वर्णयामास तत्त्ववित् ॥28॥

धर्मार्थ+ काम+ मोक्षां(म्)श्च , नानाख्या+ नेति+ हासेषु

तब तत्त्ववेत्ता भीष्म-पितामह ने वर्ण और आश्रम के अनुसार पुरुष के स्वाभाविक धर्म और वैराग्य तथा राग के कारण विभिन्न रूप से बतलाये हुए निवृत्ति और प्रवृत्ति रूप द्विविध धर्म, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म और भगवद्धर्म—इन सबका अलग-अलग संक्षेप और विस्तार से वर्णन किया। शौनक जी ! इनके साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों का तथा इनकी प्राप्ति के साधनों का अनेकों उपाख्यान और इतिहास सुनाते हुए विभागशः वर्णन किया।

धर्मं(म्) प्रवदतस्तस्य, स कालः(फ्) प्रत्युपस्थितः।

यो योगिनश्छन्दमृत्योर्- वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥29॥

प्रवद+ तस्तस्य ,योगिनश्+ छन्द+ मृत्योर्, वाञ्छितस् + तूत्+ तरायणः

भीष्मपितामह इस प्रकार धर्म का प्रवचन कर ही रहे थे कि वह उत्तरायण का समय आ पहुँचा, जिसे मृत्यु को अपने अधीन रखने वाले भगवत्परायण योगी लोग चाहा करते हैं।

तदोपसं(म्)हृत्य गिरः(स्) सहस्रणीर्,

विमुक्तसङ्गं(म्) मन आदिपूरुषे।

कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे-

पुरः(स्)स्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥30॥

पुरः+ स्थितेऽ+ मीलि+ तदृग् + व्यधारयत्

उस समय हजारों रथियों के नेता भीष्मपितामह ने वाणी का संयम करके मनको सब ओर से हटा कर अपने सामने स्थित आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्ण के सुन्दर चतुर्भुज विग्रहपर उस समय पीताम्बर फहरा रहा था। भीष्मजी की आँखें उसी पर एकटक लग गयीं।

विशुद्धया धारणया हताशुभस्-

तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः।

निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्-

तुष्टाव जन्यं(वँ) विसृजञ्जनार्दनम् ॥31॥

तदी+ क्षयै+ वाशु , गता+ युध+ व्यथः, निवृत् + तसर्वेन्द्रिय+ वृत्ति+ विभ्रमस् , विसृजञ् + जनार्दनम्

उनको शस्त्रों की चोट से जो पीड़ा हो रही थी, वह तो भगवान् के दर्शन मात्र से ही तुरन्त दूर हो गयी तथा भगवान् की विशुद्ध धारणा से उनके जो कुछ अशुभ शेष थे, वे सभी नष्ट हो गये। अब शरीर छोडने के समय उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों के वृत्ति-विलास को रोक दिया और बड़े प्रेम से भगवान् की स्तुति की।

श्रीभीष्म उवाच

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा

भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि।

स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं(म्)

प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥32॥

मति+ रुप+ कल्पिता , सात्+ वत+ पुङ्गवे, स्व+ सुख+ मुपगते, क्वचिद् + विहर्तुं(म्),

प्रकृति+ मुपे+ युषि ,यद् + भव+ प्रवाहः

भीष्म जी ने कहा—अब मृत्यु के समय मैं अपनी यह बुद्धि, जो अनेक प्रकार के साधनों का अनुष्ठान करने से अत्यन्त शुद्ध एवं कामना रहित हो गयी है, यदुवंश-शिरोमणि अनन्त भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित करता हूँ, जो सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूप में स्थित रहते हुए ही कभी विहार करने की—लीला करने की इच्छा से प्रकृति को स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टि परम्परा चलती है।

त्रिभुवनकमनं(न्) तमालवर्णं(म्),

रविकरगौरवराम्बरं(न्) दधाने।

वपुरलककुलावृताननाब्जं(वँ्),

विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥33॥

त्रिभुवन+ कमनं(न्), रविकर+ गौरव+ राम्बरं(न्), वपु+ रलक+ कुला+ वृता+ ननाब्जं(वँ्)

जिनका शरीर त्रिभुवन-सुन्दर एवं श्याम तमाल के समान साँवला है, जिस पर सूर्य-रश्मियों के समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है और कमल-सदृश मुख पर घुँघराली अलकें लटकती रहती हैं, उन अर्जुन-सखा श्रीकृष्ण में मेरी निष्कपट प्रीति हो।

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-

कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये।

मम निशितशरैर्विभिद्यमानैत् -

वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥34॥

तुरग +रजो+ विधूम्र+ विष्वक् , कच+ लुलित+ श्रम+ वार्यलङ्+ कृतास्ये ,

निशित+ शरैर् + विभिद्यमानत् , विलसत् + कवचेऽस्तु

मुझे युद्ध के समय की उनकी वह विलक्षण छबि याद आती है। उनके मुख पर लहराते हुए घुँघराले बाल घोड़ों की टाप की धूल से मट मैले हो गये थे और पसीने की छोटी-छोटी बूँदें शोभायमान हो रही थीं। मैं अपने तीखे बाणों से उनकी त्वचा को बींध रहा था। उन सुन्दर कवच मण्डित भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति मेरा शरीर, अन्त:करण और आत्मा समर्पित हो जायँ।

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये,

निजपरयोर्बलयो रथं(न्) निवेश्य।

स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा,

हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥35॥

निज+ परयोर् + बलयो, पर+ सैनिका+ युरक्ष्णा , रतिर् + ममास्तु

अपने मित्र अर्जुन की बात सुनकर, जो तुरंत ही पाण्डव-सेना और कौरव-सेना के बीच में अपना रथ ले आये और वहाँ स्थित होकर जिन्होंने अपनी दृष्टि से ही शत्रुपक्ष के सैनिकों की आयु छीन ली, उन पार्थसखा भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी परम प्रीति हो।

व्यवहितपृतनामुखं(न्) निरीक्ष्य,

स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या।

कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्-

चरणरति:(फ्) परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥36॥

व्यवहित+ पृतना+ मुखं(न्) , स्वजन+ वधाद्+ विमुखस्य , कुमति+ महर+ दात्म+ विद्यया

अर्जुन ने जब दूर से कौरवों की सेना के मुखिया हम लोगों को देखा, तब पाप समझ कर वह अपने स्वजनों के वध से विमुख हो गया। उस समय जिन्होंने गीता के रूप में आत्म विद्या का उपदेश करके उसके सामयिक अज्ञान का नाश कर दिया, उन परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में मेरी प्रीति बनी रहे।

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-

मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थ:।

धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्-

हरिरिव हन्तुमिभं(ङ्) गतोत्तरीयः ॥37॥

स्व+ निगम+ मपहाय , मृत+ मधिकर् + तुम + वप्लुतो

धृत+ रथ+ चरणोऽभ्य+ याच् + चलद्गुर्, गतोत् + तरीयः

मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं श्रीकृष्ण को शस्त्र ग्रहण करा कर छोड़ूँगा; उसे सत्य एवं ऊँची करने के लिये उन्होंने अपनी शस्त्र ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा तोड़ दी। उस समय वे रथ से नीचे कूद पड़े और सिंह जैसे हाथी को मारने के लिये उस पर टूट पड़ता है, वैसे ही रथ का पहिया लेकर मुझ पर झपट पड़े। उस समय वे इतने वेग से दौड़े कि उनके कंधे का दुपट्टा गिर गया और पृथ्वी काँपने लगी।

शितविशिखहतो विशीर्णदं(म्)शः,

क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे।

प्रसभमभिससार मद्वधार्थं(म्)

स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥38॥

शित+ विशिख+ हतो, क्षतज+ परिप्लुत, प्रसभम+ भिससार

मुझ आततायी ने तीखे बाण मार-मारकर उन के शरीर का कवच तोड़ डाला था, जिस से सारा शरीर लहूलुहान हो रहा था, अर्जुन के रोकने पर भी वे बल पूर्वक मुझे मारने के लिये मेरी ओर दौड़े आ रहे थे। वे ही भगवान् श्रीकृष्ण, जो ऐसा करते हुए भी मेरे प्रति अनुग्रह और भक्त वत्सलता से परिपूर्ण थे, मेरी एक मात्र गति हों—आश्रय हों।

विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे,

धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये।

भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोर्-

यमिह निरीक्ष्य हता गताः(स्) सरूपम् ॥39॥

आत्+ ततोत्रे, धृत+ हय+ रश्मिनि, तच्छ्रिये+ क्षणीये , मुमूर् + षोर्

अर्जुन के रथ की रक्षा में सावधान जिन श्रीकृष्ण के बायें हाथ में घोड़ों की रास थी और दाहिने हाथ में चाबुक, इन दोनों की शोभा से उस समय जिनकी अपूर्व छवि बन गयी थी, तथा महाभारत युद्ध में मरने वाले वीर जिनकी इस छविका दर्शन करते रहने के कारण सारूप्य मोक्ष को प्राप्त हो गये, उन्हीं पार्थसारथि भगवान् श्रीकृष्ण में मुझ मरणासन्न की परम प्रीति हो।

ललितगतिविलासवल्गुहास-

प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः।

कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः(फ्),

प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः ॥40॥

ललित+ गति+ विलास+ वल्गुहास , प्रणय+ निरीक्षण+ कल्पितो+ रुमानाः

जिनकी लटकीली सुन्दर चाल, हाव-भाव युक्त चेष्टाएँ, मधुर मुसकान और प्रेमभरी चितवन से अत्यन्त सम्मानित गोपियाँ रासलीला में उनके अन्तर्धान हो जाने पर प्रेमोन्माद से मतवाली होकर जिनकी लीलाओं का अनु करण करके तन्मय हो गयी थीं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण में मेरा परम प्रेम हो।

मुनिगणनृपवर्यसं(ङ्)कुलेऽन्तः(स्)-

सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम्।

अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो,

मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥41॥

मुनिगण+ नृपवर्य+ सं(ङ्)कुलेऽन्तः(स्) , युधिष्ठिर+ राजसूय , अर्हण+ मुपपेद

जिस समय युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ हो रहा था, मुनियों और बड़े-बड़े राजाओं से भरी हुई सभा में सबसे पहले सबकी ओर से इन्हीं सबके दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्ण की मेरी आँखों के सामने पूजा हुई थी; वे ही सबके आत्मा प्रभु आज इस मृत्यु के समय मेरे सामने खड़े हैं।

तमिममहमजं(म्) शरीरभाजां(म्),

हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम्।

प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं(म्),

समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥42॥

धिष्ठित+ मात्म+ कल्पितानाम् ,प्रति+ दृश+ मिव,

नैक+ धार्क+ मेकं(म्),समधि+ गतोऽस्मि, विधूत+ भेदमोहः

जैसे एक ही सूर्य अनेक आँखों से अनेक रूपों में दीखते हैं, वैसे ही अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने ही द्वारा रचित अनेक शरीरधारियों के हृदय में अनेक रूप-से जान पड़ते हैं; वास्तव में तो वे एक और सबके हृदय में विराजमान हैं ही। उन्हीं इन भगवान् श्रीकृष्ण को मैं भेद-भ्रमसे रहित होकर प्राप्त हो गया हूँ।

सूत उवाच

कृष्ण एवं(म्) भगवति, मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः।

आत्मन्यात्मानमावेश्य, सोऽन्तः(श्)श्वास उपारमत् ॥43॥

मनोवाग्+ दृष्टि+ वृत्तिभिः , आत्मन्यात् + मान+ मावेश्य

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार भीष्मपितामह ने मन, वाणी और दृष्टि की वृत्तियों से आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण में अपने-आपको लीन कर दिया। उनके प्राण वहीं विलीन हो गये और वे शान्त हो गये।

सम्पद्यमानमाज्ञाय, भीष्मं(म्) ब्रह्मणि निष्कले।

सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं(वँ), वयां(म्)सीव दिनात्यये ॥44॥

सम्पद्य+ मान+ माज्ञाय , बभू+ वुस्ते

उन्हें अनन्त ब्रह्म में लीन जान कर सब लोग वैसे ही चुप हो गये, जैसे दिन के बीत जाने पर पक्षियों का कलरव शान्त हो जाता है।

तत्र दुन्दुभयो नेदुर्-देवमानववादिताः।

शशंसुः(स्) साधवो राज्ञां(ङ्),खात्पेतुः(फ्) पुष्पवृष्टयः ॥45॥

देव+ मानव+ वादिताः , पुष्प+ वृष्टयः

उस समय देवता और मनुष्य नगाड़े बजाने लगे। साधु स्वभाव के राजा उनकी प्रशंसा करने लगे और आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी।

तस्य निर्हरणादीनि, सम्परेतस्य भार्गव।

युधिष्ठिरः(ख्) कारयित्वा, मुहूर्तं(न्) दुःखितोऽभवत् ॥46॥

निर् + हरणा+ दीनि, सम्+ परेतस्य

शौनकजी ! युधिष्ठिर ने उनके मृत शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया करायी और कुछ समय के लिये वे शोकमग्न हो गये।

तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः(ख्), कृष्णं(न्) तद्गुह्यनामभिः।

ततस्ते कृष्णहृदयाः(स्), स्वाश्रमान् प्रययुः(फ्) पुनः ॥47॥

तुष्टुवुर् + मुनयो, तद् + गुह्य+ नामभिः

उस समय मुनियों ने बड़े आनन्द से भगवान् श्रीकृष्ण की उनके रहस्यमय नाम ले-लेकर स्तुति की। इसके पश्चात् अपने हृदयों को श्रीकृष्णमय बना कर वे अपने-अपने आश्रमों को लौट गये।

ततो युधिष्ठिरो गत्वा, सहकृष्णो गजाह्वयम्।

पितरं(म्) सान्त्वयामास, गान्धारीं(ञ्) च तपस्विनीम् ॥48॥

सान्त्व+ यामास

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ युधिष्ठिर हस्तिनापुर चले आये और उन्होंने वहाँ अपने चाचा धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारी को ढाढस बँधाया।

पित्रा चानुमतो राजा, वासुदेवानुमोदितः।

चकार राज्यं(न्) धर्मेण, पितृपैतामहं(वँ) विभुः ॥49॥

वासुदेवा + नुमोदितः, पितृ + पैतामहं(वँ)

फिर धृतराष्ट्र की आज्ञा और भगवान् श्रीकृष्ण की अनुमति से समर्थ राजा युधिष्ठिर अपने वंश परम्परागत साम्राज्य का धर्म पूर्वक शासन करने लगे।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(म्)

प्रथमस्कन्धे युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भो नाम नवमोऽध्यायः।।

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्) पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।